ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.2, April-June, 2025/35

भारतीय संविधान का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पूजा नायक
https://doi.org/ 10.61410/had.v20i2.238

सारांश–

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश–काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं में संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था। किसी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का वह बुनियादी सांचा–ढांचा निर्धारित करता है जिसके अन्तर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगों की स्थापना करता है, उनकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधो का विनियमन करता है।

महत्वपूर्ण शब्द : औपनिवेशिक काल, क्राउन, संवैधानिक विधि, मॉर्ले मिण्टों सुधार, ब्रिटिशं पार्लियामेंट, डोमिनियम विधानमण्डल

हर देश में अलग–अलग समूह के लोग रहते हैं। पर दुनिया भर में लोगों के बीच विचारों और हितों में फर्क रहता है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली हो या न हो पर दुनिया के सभी देशों को ऐसे बुनियादी नियमों की जरुरत होती है। यह बात सिर्फ सरकारों पर लागू नहीं होती। हर संगठन के कायदे–कानून होते हैं, संविधान होता है। जैलीनेक ने संविधान की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए कहा कि– '' संविधानहीन राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। संविधान के अभाव में राज्य न होकर एक प्रकार की अराजकता होगी।'' आस्टिन के अनुसार :– ''संविधान सर्वोच्च शासन के ढाँचें को निश्चित करता है।'' गिलक्राइस्ट के अनुसार :– '' संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा

- **एसोएिट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, नेशनल पी.जी.कॉलेज, बड़हलगंज**

कानूनों का समूह होता है, जिनके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगो में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।'' के0सी0 व्हीयर के अनुसार :– संविधान का प्रयोग संपूर्ण शासन–व्यवस्था के लिए किया जाता है। संविधान में निहित नियम एवं सिद्धान्त सरकार को नियमित करते हैं।''

संविधान लिखित नियमों की ऐसी किताब है जिसे किसी देश में रहने वाले सभी लोग सामूहिक रूप से मानते हैं। संविधान सर्वोच्च कानून है। जिससे किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों के बीच के आपसी संबंध तय होने के साथ–साथ लोगों और सरकार के बीच के संबंध भी तय होते हैं। लोकतंत्र में प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। आदर्शतया जनता ही स्वयं अपने ऊपर शासन करती है। किन्तु प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलताओं तथा राष्ट्ररूपी राज्यों के बढ़ते हुए आकार के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र अब संभव नहीं रहा। जनता अपनी प्रभुसत्ता का सबसे पहले तथा सबसे बुनियादी अनुप्रयोग तब करती है, जब वह अपने आप को एक ऐसा संविधान प्रदान करती है जिसमें उन बुनियादी नियमों की रूपरेखा दी जाती है। जिनके अंतर्गत राज्य के विभिन्न अंगो को कतिपय शक्तियाँ अंतंरित की जाती है और जिनका प्रयोग उनके द्वारा किया जाता है। संघीय व्यवस्था में संविधान संघ स्तर पर और दूसरी ओर राज्यों या इकाइयों के स्तर पर राज्यों के विभिन्न अंगो के बीच शक्तियों का निरूपण, परिसीमन और वितरण करता है।

संविधान को एक जड़ दस्तावेज मात्र मान लेना ठीक नहीं होगा क्योंकि संविधान केवल वही नहीं है, जो संविधान के मूल पाठ में लिखित है। संविधान सक्रिय संस्थाओं का एक संजीव संघठन है। यह निरन्तर पनपता रहता है, पल्लवित रहता है। हर संविधान इसी बात से अर्थ तथा तत्व ग्रहण करता है कि उसे किस तरह अमल में लाया जा रहा है।। बहुत कुछ इस पर निर्भर है कि देश के न्यायालय किस प्रकार उसका निर्वाचन करते है तथा उसके अमल में लाने की वास्तविक प्रक्रिया में उसके चारो ओर कैसी परिपाटियाँ तथा प्रथाए जन्म लेती है।

संविधान का अर्थ एवं संवैधानिक विधि

संविधानवाद उन विचारों व सिद्धांतो की ओर संकेत करता हैं, जो उस संविधान का विवरण एवं समर्थन प्रस्तुत करतें हैं; जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना सम्भव होता हैं। संविधानवाद में शासन संविधान के अनुसार संचालित होना चाहिए और उस पर ऐसा प्रभावशाली नियंत्रण कायम रहें, जिससे उन मूल्यों व राजनीतिक आदर्शों की सुरक्षा को आघात न पहुचे, जिनके लिए जनता ने राज्य के बंधन को स्वीकारा हैं। संविधानवाद कानून की सर्वोच्चता पर आधारित हैं, व्यक्ति की सर्वोच्चता पर नहीं।

संविधानवाद एक ऐसा राज्य व्यवस्था की संकल्पना है, जो संविधान के अन्तर्गत हो तथा जिससे सरकार के अधिकार सीमित औरविधि के अधीन हो। स्वेच्छाधारी, सत्तावादी अथवा सर्वाधिकार वादी जैसे शासनो के विपरीत, संवैधानिक शासन प्रायः लोकतांत्रिक होता है तथा लिखित संविधान के द्वारा नियमित होता है। लिखित संविधान में राज्य के विभिन्न अंगो की शक्तियों तथा उनके दायित्वों की परिभाषा तथा सीमांकन होता है। लिखित संविधान के अन्तर्गत स्थापित सरकार सांकुश ही हो सकती है। लेकिन, यह भी सम्भव है कि किन्ही देशो में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है लिखित संविधान तो हो लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था न हो। कहा जा सकता है कि उनके पास संविधान है

किन्तु वहाँ पर संविधानवाद नहीं है। ऐसे भी उदाहरण है, जैसे ब्रिटेन, जहा लिखित संविधान नही किन्तु लोकतंत्र और संविधान है।

संवैधानिक विधि

संवैधानिक विधि सामान्यतया संविधान के उपबन्धों में समाविष्ट देश की मूलभूत विधि की द्योतक होती है। विशेष रूप से इसका सरोकार राज्य के विभिन्न अंगो के बीच और संघ तथा इकाइयो के बीच शक्तियों के विवरण के ढाचे की बुनियादी विशेषाताओं से होता है। किंतु आधुनिक संवैधानिक विधि में, खासतौर पर स्वाधीन प्रतिनिधिक लोकतंत्र में, मूल मानव अधिकारो और नागरिकों तथा राज्य के परस्पर संबन्धों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। इसके अलावा, संवैधानिक विधि के स्त्रोतों में संविधान का मूल पाठ ही सम्मिलित नही होता, इसमें संवैधानिक निर्णय जन्म विधि, परिपाटिया और कतिपय संवैधानिक उपबंधो के अन्तर्गत बनाये गए अनेक कानून भी सम्मिलित होते है।

प्राचीन भारत में संवैधानिक शासन–प्रणाली

लोकतंत्र, प्रतिनिधि–संस्थान, शासको की तानाशाही शक्तियों पर अंकुश और विधि के शासन की संकल्पनाए प्राचीन भारत के लिए अपरिचित नही थी। धर्म की सर्वोच्चता की संकल्पना विधि के शासन या नियंत्रित सरकार की संकल्पना से भिन्न नहीं थी। प्राचीन भारत में शासन धर्म से बंधे हुए थे, कोई भी व्यक्ति धर्म का उल्लंघन नही कर सकता था। प्राचीन भारत के अनेक भागों में गणतन्त्र शासन प्रणाली, प्रतिनिधि–विचारण–मण्डल और स्थानीय स्वशासी संस्थाए विद्यमान थी और वैदिक काल (3000–1000 ई0 पू0) से ही लोकतांत्रिक चिंतन तथा व्यवहार लोगो के जीवन में था।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सभा (आमसभा) तथा समिति (वयोवृद्धों की सभा) का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण, पाणिनी की अष्टाधायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, महाभारत, अंशोकस्तम्भों पर उत्कीर्ण शिलालेख, उस काल के बौद्ध तथा जैन ग्रंन्थ और मनुस्मृति ये सभी इस बात के साक्ष्य हैं कि भारतीय इंतिहास के वैदिकोत्तर काल में अनेक सक्रिय गणतंत्र विद्यमान थे।

ई0पू0 चौथी शताब्दीं में 'क्षुद्रक मल्ल संघ' नामक गणतंत्र–परिसंघ ने सिकन्दर का मुकाबला किया था। पाटलीपुत्र (पटना) के निकट लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। वह राज्य एक गणतंत्र था उसका शासन एक सभा चलाती थी। उसका एक निर्वाचित अध्यक्ष होता था और उसे नायक कहा जाता था।

दशवीं शताब्दी में शुक्राचार्य ने 'नीतिसार' की रचना की जो संविधान पर लिखी गई पुस्तक है। इसमें केन्द्रीय सरकार के संगठन एवं ग्रामीण तथा नगरीय जीवन, राजा की परिषद और सरकार के विभिन्नं विभागों का वर्णन किया गया है। गणराज्य, निर्वाचित राजा, सभा और समिति जैसे लोकतांत्रिक संस्थान बाद में लुप्त हो गए। किन्तु ग्राम स्तर पर ग्राम संघ, ग्राम सभा अथवा पंचायत जैसे प्रतिनिधि–निकाय जीवित रहे और अनेक हिन्दू तथा मुस्लिम राजवंशों के शासन के दौरान तथा अंग्रेजी शासन के आगमन तक कार्य करते रहे और फलते–फूलते रहे।

औपनिवेशिक काल में संवैधानिक विकास –

31 दिसम्बर 1600 को लंदन के कुछ व्यापारियों द्वारा बनायी गयी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महारानी एलिजाबेथ से शाही चार्टर प्राप्त कर भारत तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के कुछ क्षेत्रों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया। औरंगजेब की मृत्यु (1707) और 1757 के प्लासी के युद्ध में कम्पनी की विजय के साथ ही भारत में अंग्रेजी शासन की नींव पड़ी।

रेंग्युलेटिग एक्ट, 1773 भारत के संवैधानिक इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियन्त्रण के प्रयासों की शुरूआत थी। कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन अब कंपनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में भारत में कंपनी के शासन के लिए पहली बार एक लिखित संविधान प्रस्तुत किया गया।

चार्टर एक्ट, 1833 – भारत में अंग्रेजी राज के दौरान संविधान निर्माण के संकेत 1833 के चार्टर एक्ट में मिलते हैं। इस एक्ट के अंतर्गत सपरिषद, गवर्नर–जनरल के विधि–निर्माण अधिवेशनों तथा उसके कार्यपालक अधिवेशनों में अंतर करते हुए भारत में अंग्रेंजी शासनाधीन क्षेत्रों के शासन में संस्थागत विशेषीकरण का तत्व समाविष्ट किया गया।

चार्टर एक्ट 1853 का चार्टर एक्ट अंतिम चार्टर एक्ट था। इस एक्ट के अंतर्गत भारतीय गवर्नर जनरल की परिषद को ऐसी विधायी प्राधिकरण के रूप में जारी रखा गया जो समूचे ब्रिटिश भारत के लिए विधियां बनाने में सक्षम थी। तथापि इसके स्वरूप तथा संघटन में अनेक परिवर्तन कर दिये गये जिससे कि 'पूरी प्राणाली ही परिवर्तित हो गई थी। विधायी कार्यों के लिए परिषद में छः विशेष सदस्य जोड़कर इसका विस्तार कर दिया गया। इन सदस्यों को विधियां तथा विनियम बनाने के लिए बुलाई गई बैठकों के अलावा परिषद में बैठने तथा मतदान करने का अधिकार नहीं था। इन सदस्यों को विधायी परिषद कहा जाता था। परिषद में गवर्नर–जनरल, कमाण्डर–इन चीफ, मद्रास, बंबई, कलकत्ता और आगरा के स्थानीय शासकों के चार प्रतिनिधियों समेत अब बारह सदस्य हो गये थे। परिषद के विधायी कार्यों को इसके कार्यपालक अधिकारों से स्पष्ट रूप से अलग कर दिया गया था और एक्ट की धारा 23 की अपेक्षाओं के अनुसार उनके इस विशेष स्वरूप पर बल दिया गया था कि सपरिषद गवर्नर जनरल में निहित विधियां और विनियम बनाने की शक्तियों का प्रयोग केवल 'उक्त परिषद की बैठकों' में किया जायेगा।

1858 का एक्ट

भारत में अंग्रेजी शासन के मजबूती के साथ स्थापित हो जाने के बाद 1857 का विद्रोह अंग्रेजी शासन का तख्ता पटल देने का पहला संगठित प्रयास था। उसे अंग्रेंज इतिहासकारों ने भारतीय गदर तथा भारतीयों ने स्वाधीनता के लिए प्रथम युद्ध का नाम दिया। इस विद्रोह ने, जिसे अन्ततः दबा दिया गया। भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी की व्यवस्था को एक घातक झटका पहुंचाया। ब्रिटिश संसद ने कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर विस्तारपूर्वक विचार–विमर्श करने के बाद एक नया एक्ट पास किया। यह एक्ट अंततः 1858 का 'भारत के उत्तम प्रशासन के लिए एक्ट' बना। इस एक्ट के अधीन, उस समय जो भी भारतीय क्षेत्र कंपनी के कब्जे में थे, वे सब क्राउन में निहित हो गये। और उन पर (भारत के लिए) प्रिसिंपल सेक्रेटरी आफ स्टेट के माध्यम से कमी करते हुए क्राउन द्वारा तथा उसके नाम, सीधे

शासन किया जाने लगा। किन्तु 1858 का एक्ट अधिकांशतः ऐसे प्रशासन तंत्र में सुधार तक ही सीमित था जिसके द्वारा भारत के प्रशासन पर इंग्लैण्ड में निरीक्षण और नियंत्रण किया जाना था। इसके द्वारा भारत की तत्कालीन शासन व्यवस्था में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं किया गया।

भारतीय परिषद एक्ट, 1861 भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना है। यह दो मुख्य कारणों से महत्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसने गवर्नर–जनरल को अपनी विस्तारित परिषद में भारतीय प्रतिनिधियों को नामजद करके उन्हें विधायी कार्य से संबद्ध करने का अधिकार दे दिया। दूसरा यह कि इसने गवर्नर–जनरल की परिषद की विधायी शक्तियों का विक्रेन्द्रीयकरण कर दिया तथा उन्हें बम्बई तथा मद्रास की सरकारों मे निहित कर दिया।

गवर्नर–जनरल की कार्यपालिका परिषद का विस्तार कर दिया गया। उसमें एक पांचवा सदस्य सम्मिलित कर दिया। उसके लिए न्यायविद होना जरूरी था। विधायी कार्यो के लिए कम से कम छः तथा अधिक से अधिक बारह अतिरिक्त सदस्य सम्मिलित किये गये। उनमें कम से कम आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना जरूरी था। यद्यपि एक्ट में स्पष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया था, तथापि विधान परिषद के गैर सरकारी सदस्यों में भारतीयों को भी शामिल किया जा सकता था। वास्तव में 1862 में गवर्नर जनरल लार्ड कैनिन ने नवगठित विधान परिषद में तीन भारतीयों– पटियाला के महाराजा, बनारस के राजा और सर दिनकर राव– को नियुक्त किया। भारत में अंग्रेजी राज की शुरूआत के बाद पहली बार भारतीयों को विधायी कार्य से जोड़ा गया।

1861 के एक्ट में अनेक त्रुटियां थी। उसके अलावा यह भारतीय आकांक्षाओं को भी पूरा नहीं करता था। इसने गवर्नर जनरल को सर्व शक्तिमान बना दिया था। गैर सरकारी सदस्य कोई भी प्रभावी भूमिका अदा नहीं कर सकते थे न तो कोई प्रश्न पूछा जा सकता था और न ही बचत पर बहस हो सकती थी। देश में राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति निरंतर खराब होती गई। अनाज की भारी किल्लत हो गई और 1877 में जबरदस्त अकाल पड़ा इससे व्यापक असंतोष फैल गया और स्थिति विस्फोटक बन गई। 1857 के विद्रोह के बाद जो दमन चक्र चला, उसके कारण अंग्रेजों के खिलाफ लोगों की भावनाएं भड़क उठी थी। इनमें और भी तेजी आई जब यूरोपियों और आंग्ल भारतीयों ने इल्वर्ट विधेयक का जमकर विरोध किया।

संविधान सभा की मांग

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद भारतीयों में राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई और धीरे–धीरे भारतीयों की धारणा बनने लगी कि भारत के लोग स्वयं अपने राजनीतिक भविष्य का निर्णय करें। इसकी अभिव्यक्ति बालगंगाधर तिलक की नारे से होती है कि "स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे।" इसके पश्चात् महात्मा गाँधी ने 1922 में यह मांग की गयी कि भारत का राजनैतिक भाग्य भारतीय स्वयं बनायेंगें। 1924 में मोतीलाल नेहरू द्वारा ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गयी कि भारतीय संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया जाय। कानूनी आयोग और राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस की असफलता के कारण भारतवासियों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत शासन अधिनियम, 1935 अधिनियम किया गया। इससे भारत के लोगो की इस मांग ने जोर पकड़ा कि वे बाहरी हस्तक्षेप के बिना संविधान बनाना चाहते है, इस मांग को कांग्रेस ने 1935

में प्रस्तुत किया। 1938 में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा की मांग को स्पष्ट रखते हुए यह कहा–

"कांग्रेस स्वतंत्र और लोकतंत्रात्मक राज्य का समर्थन करती है। उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान बिना बाहरी हस्तक्षेप के ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए, जो वयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित हो।"

1939 में विश्व युद्ध छिड़ने के बाद, संविधान सभा की मांग को 14 सितंबर, 1939 को कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा जारी किए गये एक लंबे वक्तव्य में दोहराया गया। गाँधी जी ने 19 नवम्बर, 1939 को 'हरिजन' में 'द ओनली वे' शीर्षक के अन्तर्गत एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने अपने विचार व्यक्त किया कि "संविधान सभा ही देश की देशज प्रकृति का और लोकेच्छा का सही अर्थो में तथा पूरी तरह से निरूपण करने वाला संविधान बना सकती है" उन्होंने घोषणा की कि साम्प्रदायिकता तथा अन्य समस्याओं के न्यायसंगत हल का एकमात्र तरीका भी संविधान सभा ही है।

1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की मांग को पहली बार अधिकारिक रूप से स्वीकार किया भले ही स्वीकृति अप्रत्यक्ष शर्तो के साथ थी।

ब्रिटिश सरकार ने द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक संविधान सभा की मांग का विरोध किया, विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर बाहरी परिस्थितियों के कारण उन्हें स्वीकार करने के बाध्य होना पड़ा कि भारतीय संवैधानिक समस्या का हल निकालना अति आवश्यक है। 1940 में इंग्लैण्ड में बहुदलीय सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि भारत के लिए नया संविधान भारत के लोग ही बनाऐंगे। मार्च, 1942 में जब जापान भारत के द्वार पर आ गया। तब उन्होंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को जो मंत्रिमंडल के एक सदस्य थे। ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की घोषणा के प्रारूप के साथ भेजा। ये प्रस्ताव युद्ध की समाप्ति पर अंगीकार किए जाने वाले थे यदि (कांग्रेस और मुस्लिम लीग) दो प्रमुख राजनीतिक दल उन्हें स्वीकार करने के लिए सहमत हो जायें।

मुख्य प्रस्ताव दस प्रकार थे

1- भारत के संविधान की रचना भारत के लोगो द्वारा निर्वाचित संविधान सभा करेगी।
2- संविधान भारत को डोमिनियम प्रास्थिति और ब्रिटिश राष्ट्रकुल में बराबर की भागीदारी देगा।
3- सभी प्रान्तों और देशी रियासतों से मिलकर एक संघ बनेगा, किन्तु
4- कोई प्रान्त या देशी रियासत जो संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नही हो तत्समय विद्यमान अपनी संविधानिक स्थिति बनाए रखने के लिए स्वतंत्र होगा और इस प्रकार सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों से ब्रिटिश सरकार पृथक संवैधानिक व्यवस्था कर सकेगी।

किन्तु दोनों राजनीतिक दल इन प्रस्तावो को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं हो सके।

क्रिप्स के प्रस्तावों के अस्वीकार हो जाने के पश्चात् (और क्रांग्रेस द्वारा "भारत छोड़ो" आन्दोलन प्रारम्भ करने के बाद) दोनों दलो को एकमत करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए, जिसमें गवर्नर–जनरल, लार्ड वावेल की प्रेरणा से किया गया शिमला सम्मेलन भी है। इन सब के असफल हो जाने पर ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने अपने तीन सदस्यों को एक गंभीर प्रयत्न करने के लिए भेजे। उनमें

क्रिप्स भी था, किन्तु यह प्रतिनिधि मण्डल भी दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच सहमति लाने में असफल रहा। परिणामस्वरूप उसे अपने ही प्रस्ताव रखने पड़े। जिनकी भारत इंग्लैण्ड में 16 मई, 1946 को एक साथ घोषणा की गई।

मंत्रिमंडलीय प्रतिनिधि मण्डल के प्रस्ताव में भारत का संघ बनाने और उसका विभाजन करने के बीच समझौता लाने का प्रयत्न किया गया। मंत्रिमंडलीय प्रतिनिधिमण्डल ने पृथक संविधान सभा और मुसलमानों के लिए पृथक राज्य के दावे को स्पष्टतः नामंजूर कर दिया। जिस स्कीम की सिफारिश उन्होंने की उसमें मुस्लिम लींग के दावे के पीछे जो सिद्धान्त था उसको लगभग स्वीकार कर लिया गया।

उस स्कीम के मुख्य लक्ष्य ये थे–

1- एक भारत संघ होगा, जो ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से मिलकर बनेगा, जिसकी विदेश कार्य, प्रतिरक्षा और संचार के विषयों पर अधिकारिता होगी। शेष सभी शक्तियॉ प्रान्तों और राज्यों में निहित होंगी।

2- संघ की एक कार्यनपालिका और एक विधानमण्डल होगा जो प्रान्तों और राज्यों के प्रतिनिधियों से गठित होगा, किन्तु जब विधान मण्डल में कोई प्रमुख साम्प्रादायिक प्रश्न उठेगा तो उसका विनिश्चय दोनों प्रमुख समुदायों के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा।

प्रान्त उस बात के लिए स्वतंत्र होंगें कि वे कार्यपालिका और विधानमण्डलों के गुट बना लें और प्रत्येक गुट उन प्रान्तीय विषयों को अवधारित करने के लिए सक्षम होगा जिन पर गुट संगठन की अधिकारिता हागी।

जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड़ में नई लेबर सरकार सत्ता में आयी। तब 19 सितम्बर, 1945 को वायसराय लार्ड वेवल ने भारत के संबन्ध में सरकार की नीति की घोषणा की तथा 'यथाशीघ्र' संविधान–निर्माण निकाय का गठन करने के लिए महामहिम की सरकार के इरादे की पुष्टि की।

कैबिनेट मिशन ने अनुभव किया कि संविधान–निर्माण निकाय का गठन करने की सर्वाधिक संतोषजनक विधि यह होती कि उसका गठन वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा किया जाता, किंतु ऐसा करने पर पर नए संविधान के निर्माण में 'अवांछनीय विलम्ब' हो जाता। इसलिए उनके अनुसार एकमात्र व्यवहार्य तरीका यही था कि हाल में निर्वाचित प्रान्तीय सभाओं का उपयोग निर्वाचन निकायों के रूप में किया जाए। तत्कालीन परिस्थितियों में मिशन ने इसे "सर्वाधिक न्यायोचित तथा व्यवहार्य योजना" बताया और सिफारिश की कि संविधान–निर्माण–निकाय में प्रान्तों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर हो। मोटे तौर पर दस लाख लोगों के पीछे एक सदस्य चुना जाए और विभिन्न प्रान्तों को आवंटित स्थान इस प्रयोजन के लिए वर्गीकृत मुख्य समुदायों यथा सिक्खों, मुसलमानों और सामान्य लोगों में (सिक्खों तथा मुसलमानों का छोड़कर) उनकी जनसंख्या के आधार पर विभाजित कर दिए जाए। प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभा में उस समुदाय के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। और मतदान एकल संक्रमणीय मत सहित अनुपाती प्रतिनिधित्व की विधि द्वारा कराया जाना था। भारतीय रियासतों के लिए आवंटित सदस्यों की संख्या भी जनसंख्या के उसी आधार पर निर्धारित की

जानी थी, जो ब्रिटिश भारत के लिए अपनाया गया था, किंतु उनके चयन की विधि बाद में परामर्श द्वारा तय की जानी थी। संविधान–निर्माण निकाय की सदस्य संख्या 389 निर्धारित की गई। जिसमें से 292 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के गवर्नरो के अधीन ग्यारह प्रान्तों से, 4 चीफ कमिश्नरों के चार प्रान्तों अर्थात् दिल्ली, अजमेर–मारवाड़, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान से एक–एक तथा प्रतिनिधि भारतीय रियासतों से लिए जाने थे।

कैबिनेट मिशन ने संविधान के लिए बुनियादी ढाँचे का प्रारूप पेश किया तथा संविधान–निर्माण निकाय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का कुछ विस्तार के साथ निर्धारण किया।

ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को आवंटित (2924) 296 स्थानों के लिए जुलाई–अगस्त, 1946 तक पूरे कर लिए गये थे। कांग्रेस को 208 स्थानों पर जिनमें नौ का छोड़कर शेष 73 स्थानों पर विजय प्राप्त हुये

ब्रिटिश भारत की विधानसभाओं से चुने गये सदस्यों का पार्टीवार ब्यौरा इस प्रकार थाः–

कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
युनियनिस्ट	1
युनियनिस्ट मुस्लिम	1
युनियनिस्ट अनुसूचित जातियां	1
कृषक प्रजा	1
अनुसूचित जाति परिसंघ	1
सिक्ख (गैस कांग्रेस)	1
कम्युनिस्ट	1
स्वतन्त्र	1
	8
	296

कहा जा सकता है कि 14–15 अगस्त, 1947 को देश के विभाजन तथा उसकी स्वतन्त्रा के साथ ही, भारत की संविधान सभा कैबिनेट मिशन योजना के बंधनो से मुक्त हो गई। और एक पूर्णतया प्रभुसत्तासम्पन्न निकाय तथा देश में ब्रिटिश संसद के पूर्ण अधिकार तथा उसकी सत्ता की पूर्ण उत्तराधिकारी बन गई। इसके अलावा, 3 जून की योजना की स्वीकृति के बाद, भारतीय डोमिनियम के मुस्लिम लीग पार्टी के सदस्यों ने भी विधानसभा में अपने स्थान ग्रहण कर लिये। कुछ भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि पहले ही 28 अप्रैल, 1947 को विधान सभा में आ गए और शेष रियासतों ने भी यथासमय अपने प्रतिनिधि भेज दिए।

इस प्रकार संविधान सभा भारत में सभी रियासतों तथा प्रान्तों की प्रतिनिधि तथा किसी भी बाहरी शक्ति के आधिपत्य से पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न निकाय बन गयी। संविधान सभा भारत में लागू ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को, यहाँ तक कि भारतीय स्वतंत्रता एक्ट को भी रद्द अथवा परिवर्तित कर सकती थी।

संविधान निर्माण की प्रक्रिया

संविधान सभा का उद्घाटन नियत दिन सोमवार, 09 दिसम्बर, 1946 को प्रातः ग्यारह बजे हुआ। संविधान सभा का सत्र कुछ दिन चलने के बाद नेहरू जी ने 13 दिसम्बर, 1946 ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया। सुन्दर शब्दों में तैयार किये गये उद्देश्य के प्रारूप में भारत के भावी प्रभुत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की रूपरेखा दी गई थी। इस प्रस्ताव में एक संघीय राज्य व्यवस्था की परिकल्पना की गई थी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां स्वायत्त इकाइयों के पास होती तथा प्रभुत्ता जनता के हाथों में। सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, परिस्थिति की, अवसर भी और कानून के समक्ष समानता, विचारधारा, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगत और कार्य की स्वतन्त्रता की गारंटी दी गई और इसके साथ ही अल्पसंख्यकों, पिछड़े तथा जनजातीय क्षेत्रों तथा दलितों और अन्य पिछड़े वंर्गों के लिए पर्याप्त 'रक्षा उपाय' रखे गये। इस प्रकार इस प्रस्ताव ने संविधान सभा को इसके मार्गदर्शी सिद्धान्त तथा दर्शन दिये जिनके आधार पर इसे संविधान निर्माण का कार्य करना था। अन्ततः 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

संविधान सभा ने संविधान रचना की समस्या के विभिन्न पहलुओं से निपटने के लिए अनेक समितियां नियुक्त की। इनमें संघीय संविधान समितियां शामिल थी। इनमें से कुछ समितियों के अध्यक्ष नेहरू या पटेल थे, जिन्हें संविधान सभा के अध्यक्ष ने संविधान का मूल आधार तैयार करने का श्रेय दिया था। इन समितियों ने बड़े परिश्रम के साथ तथा सुनियोजित ढंग से कार्य किया और अनमोल रिपोर्ट पेश की। संविधान सभा ने तीसरे तथा छठें सत्रों के बीच मूल अधिकारों, संघीय संविधान, संघीय शक्तियों, प्रान्तीय संविधान अल्पसंख्यकों तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित समितियों की रिपोर्ट पर विचार किया।

भारत के संविधान का पहला प्रारूप संविधान तथा कार्यालय की मंत्रणा शाखा ने अक्टूबर, 1947 को तैयार किया। इस प्रारूप की तैयारी से पहले, बहुत सारी आधार सामग्री एकत्र की गई तथा संविधान सभा के सदस्यों को 'संवैधानिक पूर्वदृष्टांत' के नाम से तीन संकलनों के रूप में उपलब्ध की गई। इस संकलनों में लगभग 60 देशों के संविधानों से मुख्य अंश उद्धृत किये गये थे।। संविधान सभा में किये गये निर्णयों पर अमल करते हुंए संवैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार किये गये भारत के संविधान के मूल पाठ के प्रारूप की छानबीन करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को डा0 भीमराव अम्बेडकर के सभापतित्त्व में प्रारूपण समिति नियुक्त की।

प्रारूपण समिति द्वारा तैयार किया गया भारत के संविधान का प्रारूप 21 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया। संविधान के प्रारूप में संशोधन के लिए बहुत बड़ी संख्या में टिप्पणियां, आलोचनाएं और सुझाव प्राप्त हुए। प्रारूपण समिति ने इन सभी पर विचार किया। इन सभी पर प्रारूपण समिति की सिफारिशों के साथ विचार करने लिए एक विंशेष समिति का गठन किया। विशेष समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर प्रारुपण समिति ने एक बार फिर विचार किया और कतिपय संशोधन समावेंश के लिए छांट लिए गये। इस प्रकार के संशोधनों के निरीक्षण की सुविधा के लिए प्रारूपण समिति ने संविधान के प्रारूप को दोबारा छपवाकर जारी करने का निर्णय किया। यह 26 अक्टूबर, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया।

संविधान के प्रारूप पर खण्डवार विचार 15 नवम्बर, 1948 से 17 अक्टूबर, 1949 के दौरान पूरा कियाा गया। प्रस्तावना सबसे बाद में स्वीकार की गई। तत्पश्चात्, प्रारूपण समिति ने परिणामी या आवश्यक संशोधन किए, अंतिम प्रारूप तैयार किया और उसे संविधान सभा के सामने पेश किया।

संविधान का दूसरा वाचन 16 नवम्बर, 1949 को पूरा हुआ तथा उससे अगले दिन संविधान सभा ने डॉ0 अम्बेडकर के इस प्रस्ताव के साथ कि विधानसभा द्वारा यथानिर्णीत संविधान पारित किया जाए, संविधान का तीसरा वाचन शुरू किया। प्रस्ताव 26 नवम्बर, 1949 को स्वीकृत हुआ तथा इस प्रकार, उस दिन संविधान सभा में भारत की जनता ने भारत के प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य का संविधान स्वीकार किया, अधिनियमित किया और अपने आपको अर्पित किया। संविधान सभा ने संविधान बनाने का भारी काम दो वर्ष ग्यारह माह अठारह दिन में पूर्ण किया।

संविधान पर संविधान सभा के सदस्यों द्वारा 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा के अंतिम दिन अंतिम रूप से हस्ताक्षर किये।

संविधान निर्माताओं ने पुराने संस्थानों के आधार पर जो पहले से विकसित हो चुके थे और जिनके बारे में उन्हें जानकारी थी, जिनसे वे परिचित हो चुके थे और जिनके लिए उन्होंने सभी प्रकार की परिसीमाओं, बंधनों के बावजूद उद्यम किया था, नए संस्थानों का निर्माण करना पसंद किया। संविधान के द्वारा ब्रिटिश शासन को ठुकरा दिया किन्तु उन संस्थानों को नहीं जो ब्रिटिश शासनकाल में विकसित हुए थे। इस प्रकार संविधान औपनिवेशिक अतीत से पूरी तरह से अलग नहीं हुआ।

संविधान सभा ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य किये, जैसे संविधायी स्वरूप के कतिपय कानून पारित किये, राष्ट्रीय ध्वज को अंगीकार किया, राष्ट्रगान की घोषणा की, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से संबंधित निर्णय की पुष्टि की तथा गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव किया।

भारंतीय संविधान के राज्य के नीतिं–निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों के संगठन का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थानों प्रेरित होकर किया गया था। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने उन्हें अब और अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण बना दिया है। मूल अधिकारों की मांग सबसे पहले 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेंस के मुंबई अधिवेशन में की गयी थी।

भारत के राज्य–संघ विधेयक में, जिसे राष्ट्रीय सम्मेलन ने 1925 में अंतिम रूप दिया था, विधि के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति, सभा करने और धर्म पालन की स्वतंत्रता जैसे अधिकारों की एक विशिष्ट घोषणा सम्मिलित थी। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें मूल अधिकारों की मांग को दोहराया गया था। सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा 1928 में नियुक्त मोतीलाल नेहरू कमेटी ने घोषणा की थी कि भारत की जनता का सर्वोपरि लक्ष्य न्याय सीमा के अधीन मून मानव अधिकार प्राप्त करना है। उस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत का भावी संविधान अपने स्वरूप में संघीय होगा। उसमें देशी रियासतों अथवा भारतीय राज्यों को अलग से अस्तित्व नहीं मिलेगा तथा उन्हें संघ में शामिल होना होगा। नेहरू रिपोर्ट में संसदात्क शासन प्रणाली अपनाये जाने का प्रावधान था। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में जो उन्नीस मूल अधिकार शामिल किये गये थे, उनमें से दस को भारत के संविधान में बिना खास परिवर्तन के शामिल कर लिया गया। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में पारित किये गये प्रस्ताव में न केवल मूल अधिकारों का बल्कि मूल कर्तव्यों का भी विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। इसमें वर्णित अनेक सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों को संविधान के

नीतिनिर्देशक तत्वों में समाविष्ट कर लिया गया था। मूल संविधान में मूल कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था किन्तु बाद में 1976 में संविधान (42वां) संशोधन अधिनियम द्वारा इस विषय पर एक नया अध्याय संविधान में जोड़ दिया गया था।

भारतीय संविधान पर 1935 के भारत के शासन अधिनियम का प्रभाव सर्वाधिक परिलक्षित होता है। राबर्ट एल. हाईंग्रेव के अनुंसार भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे हैं जो 1935 के अधिनियम से या तो अच्छरशः ले लिए गये हैं या फिर उसको थोड़ा–बहुत संशोधन करके परिवर्तन कर दिया गया है। डॉ0 पंजाबी राव देशमुख ने तो यहाँ तक कह दिया है कि नवीन संविधान 1935 का भारत शासन अधिनियम ही है। इसमें केवल वयस्क मताधिकार को जोड़ दिया गया है। वर्तमान संविधान के कुछ मुख्य उपबन्ध थे जो 1935 के अधिनियम के मुख्य सिद्धांतों से समानता रखते हैं, जैसे संविधान में सूचियों के आधार पर शक्ति विंभाजन, द्विसदनात्मक विधानमण्डल की व्यवस्था, राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की व्यवस्था, राज्यपाल पद की व्यवस्था आदि।

अनुच्छेद 251, 256, 352, 356 इत्यादि 1935 के भारत शासन अधिनियम के ही समान है।

भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत –

देशी स्रोतों के अलावा संविधा सभा के सामने विदेशी संविधानों के अनेक नमूने थे जिनसे अच्छी बातों को अपनाया गया जैसे –

1- ब्रिटेन के संविधान से संसदीय प्रणाली, विधि–निर्माण प्रक्रिया तथा एकल नागरिकता को ग्रहण किया गया। न्यायिक आदेशों तथा संसदीय विशेषाधिकारों के विवाद से सम्बन्धित उपबन्धों के परिधि तथा उनके विस्तार को समझने के लिए अभी भी ब्रिटिश संविधान का सहारा लेना पड़ता है।

भारत का संविधान –

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ है। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है :–

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ–साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्लभाारतीय आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों के मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रू॰ से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनूसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोगक आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबंधों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य –

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्या मामले पूरी तरह से स्वतंत्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

पंथ निरपेक्ष –

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपिइ स शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागोंउ में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

समाजवादी राज्य –

मूल संविधान में इस शब्द का प्रावधान नहीं किया था इसका प्रावधान 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1– कठोर संविधान 2– लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है– अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिका संघ के 50 राज्यों में से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है–

1- कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2- संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग–अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3- भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि– 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दे ंतो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

संसदीय शासन प्रणाली–

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता –

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नामतात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

मन्त्रिपरिषद (संघ में)– लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा–दोनो निम्न सदन है, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन –

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संधात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्नलिखित है :–

1- लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2- केन्द्र (संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाज (संविधान द्वारा)

3- स्वतंत्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाड़ा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है–

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में क्योंकि तीन सूची–संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे–संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण– इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता– संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

अन्ततः :–

हमारा संविधान एक आदर्श संविधान का उदाहरण प्रस्तुत करता है हमारा संविधान सरकार के तानाशाही होने की स्थिति का उन्मूलन करने की व्यवस्था करता है साथ ही साथ यह नागरिको के प्राकृतिक अधिकारो की रक्षा करते हुए नागरिको की अपने देश और समाज के प्रति जिम्मेदार बनाने की व्यवस्था करता है। हमारे देश के संविधान की प्रस्तावना ही संविधान की महानता का वर्णन करती हैं। हमारे देश का संविधान काफी लचीला है जिसमें आवश्यकता पड़ने पर संशोधन किया जा सकता है इसमें 100 से भी अधिक बार संशोधन किया जा चुका है। संविधान को बनाना कोई आसान कार्य नहीं था जब आपका देश हजार वर्षों तक गुलाम रहा हो। इसे बनाने के लिए काफी मेहनत की गई। इसके निर्माण के लिए कई देशों के संविधान को पढ़ा गया और उसके अनुसार भारत के संविधान का निर्माण किया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1- काश्यप सुभाष हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट

2- बसु. डी0डी0, भारत का संविधान–एक परिचय, नगपुर, वाधवा

3. Kagzi, M.C. Jain- The Constitutional of India Vol I&2 New Delhi, India Law House, 2001.

4. Keith, Arthur Berriedale- A Constitutional History of India 1600-1935, London, Methuan & Co.Ltd., 1937.
5. Austin, Granville- Working a Democratic Constitution : The Indian Experience. Delhi Oxford University Press 1999.
6. Sharma, Brij Kishore – Introduction to the constitution of India New Delhi, Prentice- Hall of India, 2005.
7. Keith, Arthur Berriedale- A Constitutional History of India 1600-1935, London, Methuan & Co.Ltd., 1937
8. Austin, Granville- Working a Democratic Constitution : The Indian Experience. Delhi Oxford University Press 1999.
9. Sharma, Brij Kishore – Introduction to the constitution of India New Delhi, Prentice- Hall of India, 2005.
10. Pandey J.N.- Constitutional Law of India, Allahabad, Central Law Agency, 2003.
11. Pylee, M.V. Constitutional Amendments in India, Delhi, Universal Law, 2003
12. Jois, Justice M.Rama – Legal and Constitutional History of India, Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.